ओ३म्

'संसार रूपी घोंसले में रहते हुए हम अपनी हृदय गुहा में प्रभु का दर्शन करें'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य प्रभु का दर्शन कर सभी दुःखों से 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक मुक्त रहना व ईश्वर के सान्निध्य में रह कर आनन्द को भोगना है। हमारे यहां एक नहीं अपितु अनेक ऋषियों ने अतीत में ईश्वर का साक्षात्कार कर मुक्ति की अवस्था को प्राप्त किया है। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है। यदि हम अर्थ व काम का सेवन वेद विहित मर्यादाओं व धर्मानुसार नहीं करेंगे तो हम मुक्ति से वंचित होकर बन्धनों व दुःखों में फंस जाते हैं। यजर्वेद के 32 वें अध्याय के आठवें मन्त्र में ईश्वर का मनुष्य की हृदय गुहा में विद्यमान होने, यह सारा संसार ईश्वर में एक घोंसले के समान होने तथा यह सारा विश्व वा ब्रह्माण्ड ईश्वर से उत्पन्न होकर प्रलयावस्था में उसी में समाविष्ट हो जाने की बहुत महत्वपूर्ण शिक्षा दी गई है। इस मन्त्र व इसमें निहित रहस्यों का आज हम परिचय प्राप्त करा रहें हैं। आशा है कि पाठक इससे लाभान्वित होंगे। मन्त्र हैः

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्, यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्नदं सं च विचैति सर्वं, स ओत, प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।

इस मन्त्र का ऋषि स्वयम्भु ब्रह्मा, देवता परमात्मा एवं छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। मन्त्र के पदों का अर्थ इस प्रकार है। **(वेनः) मेधावी, इच्छुक, गतिमय, अर्चनाशील, श्रवण–चिन्तनशील, मनुष्य (तत्) उस ब्रह्म को (पश्यत्) देख लेता है, {जो ब्रह्म} (गुहा निहितं सत्) गुहा में निहित है, गुप्त है, (यत्र) जिसमें (विश्वं) विश्व (एकनीडं) एक घोसलेवाला, एक आश्रयवाला (भवति) होता है। (तस्मिन्) उस {ब्रह्म} में (इदं सर्वं) यह सब {जगत} (सम् एति च) समाविष्ट जो जाता है, (वि एति च) {उत्पत्तिकाल में} बाहर निकल आता है। (सः) वह (विभूः) व्यापक ब्रह्म (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है।**

इस वेदमन्त्र के पदो के अर्थ और व्याख्या हम वेदों के प्रसिद्ध विद्वान डा. रामनाथ वेदालंकार जी की पुस्तक **'वेद मंजरी'** से दे रहे हैं। मन्त्र का भावार्थ वा व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं कि **परमात्मा गुहा में निहित है, गुह्य है। जो मेधावान् है, जिसके अन्दर ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो गया है, जिसे प्रभुदर्शन की उत्कट लालसा लगी हुई है, जो कर्मण्य है, जो अर्चनाशील है मन से उसे पाने के लिए प्रवृत्त होता है, जो श्रवणशील और चिन्तनशील है, वही उसके दर्शन कर पाता है।** वह प्रभु सबका आवास–स्थान और आश्रय–स्थान है। हर मनुष्य, मनुष्य ही क्यों, **जगत् का प्रत्येक जड़–चेतन उस पर मानो अपना–अपना घोंसला बनाकर बैठा हुआ है।** वृक्ष पर घोंसले में बैठा पक्षी भले ही समझता रहे कि मेरा आश्रय तो घोंसला है, पर असल में उसका आश्रय वृक्ष होता है। इसी प्रकार हम लोग अपनी नासमझी के कारण चाहे इस भ्रम में पड़े रहें कि हमारे आश्रय मकान–महल, सखा–कुटुम्बी राजे–महाराजे आदि हैं, पर वस्तुतः तो वह प्रभु ही हमारा अन्तिम आश्रय–स्थान है। **उसका हाथ, उसकी छत्रछाया, उसकी सहायता, उसका आश्वासन हट जानेपर हम एक पग भी नहीं चल सकते, एक सांस भी नहीं ले सकते।** उसका आधार खिसकते ही हमारे आश्रय बने हुए ये भव्य भवन, ये ऊंची–ऊंची अट्टालिकाएं, ये मीनार–मन्दिर–गुम्बद, ये विद्युत्प्रदीपों से जगमगाते हुए शानदार नगर सब क्षण–भर में धराशायी हो जाएं। उसका हाथ हट जाने पर धरती–आसमान भी रो उठें।

यह समस्त जगत्प्रपंच सृष्टयुत्पत्ति के समय उसी ब्रह्म में से बाहर निकल आता है और प्रलयकाल में उसी के अन्दर समा जाता है। जैसे मकड़ी की आत्मा मकड़ी के शरीर से जाले को बाहर निकालती है और फिर जाले को शरीर में ही समेट लेती है, वैसे ही ब्रह्म अपने शरीर भूत–प्रकृति से जगत्–प्रपंच को सृजता है और फिर अपने

प्रकृतिरूप शरीर में ही समेट लेता है। जैसे पृथिवी बीज में से ओषधियों को उत्पन्न करती है,? वैसे ही ब्रह्म प्रकृतिरूप बीज से सृष्टि उत्पन्न करता है। जैसे मनुष्य का चेतन आत्मा शरीर में से केश और रोगों को प्रकट करता है, वैसे ही ब्रह्म अपने प्रकृतिरूप शरीर में से विश्व को प्रकट करता है। **ब्रह्म अपनी रची हुई सब प्रजाओं के अन्दर ओत–प्रोत भी है (अर्थात् सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी)।** घट को रचने वाला कुम्भकार घट के अन्दर ओत–प्रोत नहीं होता। पर प्रभु की लीला विचित्र है, वह अपनी रची हुई प्रजाओं को धारण करने के लिए उनके अन्दर ओत–प्रोत भी है (अर्थात् उन सब में समाया हुआ है) । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रपंच का ऐसा महान उत्तरदायित्व जिसने अपने ऊपर लिया हुआ है, आओ, उस प्रभु के चरणों में नमस्कार करें और **'वेन'** बनकर उसके दर्शनों से कृतकृत्य हों।

इस वेदमन्त्र में बताया गया है कि ईश्वर मनुष्य की हृदय गुहा में हर क्षण व हर पल विद्यमान है अर्थात् समाया हुआ है। ओत–प्रोत व सर्वत्र विद्यमानता वा उपस्थिति उसी सत्ता की हो सकती है जो सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी हो। वस्तुतः ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी होने के कारण ही हमारे भीतर व बाहर ओत–प्रोत है। हमें शुद्ध भोजन व सात्विक चिन्तन से वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपनी बुद्धि को निर्मल व पवित्र बनाना है। ऐसा होने पर ईश्वर का अपनी हृदय गुहा में चिन्तन व ध्यान करने पर वह परमात्मा उपासक के लिए अपने यथार्थ स्वरूप का प्रंकाश कर देता है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि **''भिद्यते हृदयग्रंथिश्छियन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे।।''** जब (स्वाध्याय व वैदिक साधना से) इस जीव के हृदय की अविद्या–अज्ञानरूपी गांठ कट जाती है तब सब संशय छिन्न–भिन्न हो जाते और दुष्ट वा पाप कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। तब वह परमात्मा जो कि अपनी आत्मा के भीतर और बाहर व्यापक हो रहा है, उसका साक्षात्कार कर लेने पर निर्भान्त होकर उसमें निवास करता है। ईश्वर में आनन्द की पराकाष्ठा है, अतः जीवात्मा को ईश्वर का साक्षात्कार हो जाने पर जीवात्मा भी ईश्वर के आनन्द की पराकाष्ठा का अपनी सामर्थ्यानुसार अनुभव करता है। अपनी–अपनी आत्मा की यही स्थिति संसार के सभी जीवों वा मनुष्यों के लिए प्राप्त करने योग्य है। **यह संसार का शायद सबसे बड़ा आश्चर्य है कि मनुष्य अपने यथार्थ लक्ष्य ईश्वर का ज्ञान व साक्षात्कार को भूल कर सारा जीवन धन–दौलत के संग्रह में ही व्यतीत कर देता है। वह संसार से शुभकर्म फलों की पूंजी के नाम पर खाली हाथ ही संसार से नहीं जाता अपितु पाप की गठरी ले कर जाता है जिसका परिणाम भावी जन्मों में निरन्तर दुःखों का मिलता होता है।** अतः इस वेदमन्त्र का लाभ उठा कर इससे अभिज्ञ मनुष्यों को वेदों व वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर ईश्वर के स्वरूप को जानकर हृदय गुहा में ईश्वर का ध्यान व चिन्तन करना चाहिये जिससे ईश्वर की कृपा होने पर उस सर्वव्यापक व सबमें ओत–प्रोत प्रभु का यथासमय दर्शन हो सके। यह भी ध्यान रहे कि प्रभु दर्शन के लिए हमें मेधावी, ईश्वर दर्शन का इच्छुक, गतिमय, अर्चनाशील, श्रवण–चिन्तनशील बनना होगा। **मन्त्र में यह भी बताया गया है उस ईश्वर में यह सारा विश्व एक घोंसले के समान है। जिस प्रकार से बड़े वृक्ष में अनेक धोंसले हो सकते हैं व होते हैं उसी प्रकार से सर्वव्यापक परमेश्वर में हमारी पृथिवी रूपी घोंसले के समान अनेक व असंख्य घोंसले अर्थात् पृथिवियां हैं जहां हमारी तरह से मनुष्य व अन्य प्राणी रहते हैं।** यह रहस्य भी इस मन्त्र से विदित होता है। मन्त्र में यह भी बताया गया है कि यह सृष्टि ईश्वर से ही उत्पन्न होती है और प्रलय के समय उसी में समाविष्ट हो जाती है। ईश्वर ही इस सृष्टि का रचयिता व पालनकर्ता है। यह अन्य वैज्ञानिक रहस्य भी इस मन्त्र से स्पष्ट हो रहा है।

लेख का अधिक विस्तार न कर हम निवेदन करते हैं कि आईये, मन्त्र के प्रत्येक पद व शब्द पर विचार व चिन्तन करें और इस सृष्टि यज्ञ के रचयिता परमेश्वर का अपनी हृदय गुहा में ध्यान कर उसका दर्शन करने का प्रयत्न करें और अपने जीवन को सफल बनाये। वेदानुसार इस स्थिति को प्राप्त हों कि हम कह सके कि **''वेदाहमेतं पुरूषं महान्तं आदित्य वर्णम् तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।'' मैंने उस महान परमेश्वर को जान लिया वा देख लिया है। वह सूर्य के समान प्रकाशित व अन्धकार से सर्वथा पृथक है। उसी पमेश्वर को जानकर मैं मृत्यु रूपी दुःख से निवृत हो गया हूं वा मृत्यु के दुःख से पार हो गया हूं। मृत्यु रूपी दुःख से बचने का संसार में अन्य कोई उपाय नहीं है अर्थात् ईश्वर को जानकर वा दर्शन कर ही मनुष्य मृत्यु रूपी दुःख पर विजय प्राप्त कर सकता है।**

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001 / फोनः09412985121